भारतीय लोकतांत्रिक विचारधारा का विकास : राष्ट्रीय आन्दोलन के विशेष सन्दर्भ में

पूजा सिंह

शोध छात्र राजनीति विज्ञान विभाग
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय

सार–

वर्तमान समय में लोकतांत्रिक अधिकार सार्वभौम सत्य है। इसकी माँग तो प्राचीनकाल से ही अपने–अपने स्वरूप में की गयी है। ब्रिटिश भारत में लोकतात्रिक अधिकार बँटे हुए थे। एक तरफ अँग्रेजों के लोकतांत्रिक अधिकार थे तो दूसरी तरफ गुलाम भारतीयों के। ब्रिटिश शासकों ने भारतीयों के लोकतांत्रिक अधिकार का अपहरण कर लिया था। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान भारतीयों ने माँगो के माध्यम से लोकतांत्रिक अधिकार निश्चित मात्रा में पाये। जैसे 1813 के चार्टर में भारतीयों के आंशिक हितों का ख्याल किया गया है। इस शोधपत्र में ऐसे ही अन्य अधिनियमों, विनियमों व आन्दोलनकारियों के प्रयास को ऐतिहासिक व विश्लेषणात्मक विधि द्वारा विश्लेषित किया गया है।

आंग्ल शासन पद्धति में लोकतांत्रिक अधिकार का अस्तित्व नगण्य रहा है क्योंकि उन्होंने भारत में आंग्ल विधि के सिद्धान्तों को स्वहिताय के लिये उपयोग किया। इस शासनकाल में भारतीय जनता से दुराचार किया गया जिससे लोकतात्रिक अधिकारों की व्यवस्था क्षतिग्रस्त हुयी। आंग्ल शासकों ने भारतीयों को राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक अधिकारों से वंचित रखा। उस समय कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका द्वारा पूर्ण रूप से ब्रिटिश लोगों के हित को महत्व दिया जाता था तथा भारतीयों की उपेक्षा की जाती थी अर्थात् अधिकार तो थे पर वे केवल अंग्रेजों के लिए थे भारतीयों के लिए नहीं थे। इसी कारण महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासकों को हिसात्मक तथा अधर्मी नामों से सम्बोधित किया।[1]

भारतीयों के लिये अधिकारों की व्यवस्था स्वतन्त्रता आन्दोलन शुरू होने पर अंग्रेजों द्वारा थोड़ी–थोड़ी मात्रा में दिये जाने लगे। अग्रंजों द्वारा सर्वप्रथम 1813 में एक चार्टर पारित किया गया जिसमें भारतीयों के कल्याण तथा हित का ध्यान रखा गया।[2] कुछ अधिकारों की बात समाज में उपस्थित विद्वानों द्वारा भी की जाने लगी। जैसे इसी समय राजा राम मोहन राय भारतीय समाज में सुधारों के अग्रदूत, नवनिर्माण के प्रवर्तक तथा आधुनिक भारत के जनक के रूप में सामने आये। इन्होने लोकतांत्रिक अधिकार से सम्बन्धित जात–पात, छुआछूत, धार्मिक कर्मकाण्डों इत्यादि का विरोध किया। इन्होनें स्त्री कल्याण तथा स्त्री शिक्षा पर बल दिया। राजा राम मोहन राय के प्रयासों के कारण ही सती प्रथा को अवैध घोषित किया गया, जो लोकतांत्रिक अधिकार के उन्नयन के लिए एक सराहनीय प्रयास था। 1823 में प्रेस की स्वतन्त्रता पर लगी रोक का विरोध किया। ब्रिटिश संसद के दोनों सदनों में नागरिक स्वतन्त्रताओं के लिए याचिकायें दायर की। राजा राम मोहन राय ने 1827 के ज्यूरी अधिनियम के उस प्रावधान का विरोध किया जिसके अनुसार ''हिन्दु या मुस्लिम निवासी के अभियोग की सुनवायी कोई भी क्रिश्चियन या यूरोपीय न्यायाधीश कर सकता है जबकि हिन्दू या मुस्लिम न्यायाधीश द्वारा किसी यूरोपीय के अभियोग की सुनवायी नहीं की जा सकती।''[3]

राजा राम मोहन राय के साथ ही साथ एक अन्य विद्वान ईश्वर चन्द्र विद्यासागर का भी नाम सामने आता है, जिन्होंने समाज के सबसे दबे वर्ग अर्थात् महिलाओं के अधिकारों की बात की। उन्होंने महिलाओं के साथ होने वाली हिंसा, बाल–विवाह तथा बहु–विवाह जैसी व्यवस्थाओं का प्रतिरोध कर महिलाओं के अधिकार को सामने लाया। साथ ही साथ ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के प्रयासों से ही 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित हुआ। उन्होंने महिला शिक्षा में भी अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान दिया।[4]

भारत में अधिकारों व समाज में व्याप्त ऐसे नियमों जिससे लोकतांत्रिक अधिकार का हनन होता है, की बातें ईसाई मिशनरियों जैसे विलियम कैरी (1761–1834), जोगुआ मार्श मैन (1766–1837), पाश्चात्य विद्वानों डेविड हेयर, डिराजिओं तथा सिस्टर निवेदिता ने भी किया। इनके कार्यों से भारत में यूरोपीय पुनर्जागरण के लक्षण दिखायी देने लगे। वास्तव में राजा राम मोहन राय व ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को (लोकतांत्रिक अधिकार अर्थात् समाज सुधारों तथा रूढ़िवादिता का विरोध करने के सन्दर्भ में) दिशा दिखायी विलियम कैरी ने जब वे सेरेमपुर मिशन के अध्यक्ष बनकर कलकत्ता आये। केरे ने भारतीय भाषा का प्रचार , साहित्य तथा शिक्षा का प्रचार, भारतीय समाज में व्याप्त अलोकतात्रिकीय तथा पाश्विक व्यवहार के बारे में जनचेतना को जागृत किया। वास्तव में इन्हें भारत के पुनर्जागरण का निर्माता कहा जा सकता है।[5]

लोकतांत्रिक अधिकार तथा लोकतात्रिकीय प्रतिष्ठा के लिए चलाए गये सुधारवादी आन्दोलन धीरे–धीरे चारों ओर फैल गया। महाराष्ट्र में गोविन्द रानाडे (1842–1901) जो भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन करने वालों में से एक थे ने जातीय भेदभाव, अश्पृश्यता, बहुविवाह तथा इसी प्रकार की सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध आवाज उठाने के लिए 1887 में 'अखिल भारतीय संगठन' की स्थापना की।[6] रानाडे ने लोकतांत्रिक अधिकार की उस परस्पर निर्भरता तथा अविभाज्यता को समझा जिन्हें आज लोकतांत्रिक अधिकार की दो पीढ़िया माना जाता है। उनका मानना था कि सामाजिक और राजनीतिक व्यवस्था परस्पर निर्भर है और यह परस्पर निर्भरता कोई संयोग नहीं है बल्कि प्रकृति का एक नियम है। रानाडे ने जिस बात की 100 साल पहले सोचा था उसे 1948 में लोकतांत्रिक अधिकार के अन्तर्राष्ट्रीय घोषणा पत्र में अभिव्यक्त मिली।

इसी प्रकार ज्योतिबा फुले आधुनिक भारत की नागरिक स्वतन्त्रताओं के अग्रदूत थे। ज्योतिबा फूले ने उत्पीड़ित जातियों विशेषरूप से स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया। जिसे बाद में भारतीय संविधान के भाग–3 में जगह भी मिली। इसी प्रकार वीर सालिंगम (1848–1919) ने आन्ध्र प्रदेश में विधवा पुनर्विवाह तथा बालिका शिक्षा पर विशेष बल दिया। श्री नारायण गुरू (1855–1928) ने त्रावणकोर में जातीय उत्पीड़न के विरूद्ध संघर्ष का नेतृत्व किया। इसी समय स्वामी विवेकानन्द द्वारा गठित रामकृष्ण मिशन (1899) तथा दयानन्द सरस्वती द्वारा

गठित आर्यसमाज जैसे धर्म सुधार तथा समाज सुधार आन्दोलनों ने सभी वर्गो में शिक्षा का प्रसार किया। शिक्षा का प्रसार करने के लिए व लोगों को शिक्षित बनाने के लिए ही आर्य समाज द्वारा डी0ए0वी0 विद्यालय भी खोले गये, तथा रामकृष्ण मिशन व आर्य समाज द्वारा अंधविश्वास तथा धर्मान्धता जैसी हिन्दू समाज की बुराईयों के विरूद्ध आवाज भी उठाया गया। मुस्लिम धर्म सुधार आन्दोलन सर सैय्यद अहमद खान द्वारा चलाया गया अहमदिया आन्दोलन (1899) ने मुसलमानों में राष्ट्रीय जागृति इस्लाम की सार्वभौमिकता तथा लोकतात्रिकता का प्रसार किया।[7]

भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष के सम्पूर्ण इतिहास को लोकतांत्रिक अधिकार का इतिहास कहा जा सकता है। अंग्रेजों के अनैतिक व्यवहार ने नागरिक स्वतन्त्रताओं के लिए लड़ने और कुछ मौलिक अधिकारों की संवैधानिकता की मांग को प्रोत्साहित किया। स्वतन्त्रता संघर्ष के परिणाम स्वरूप भारतीयों को कई प्रकार का अहरणीय स्वतन्त्रताएं प्रदान की गयी जो बाद में भारतीय संविधान का स्रोत बनी। जैसे 1833 के चार्टर द्वारा सरकार ने किसी भी प्रकार के भेदभाव का विरोध किया तथा भारतीयों को सीमित राजनैतिक अधिकार दिये गये। इस अधिनियम के अधीन भारत सरकार को दासों की अवस्था सुधारने और अन्ततः दासता समाप्त करने के लिए भी आज्ञा दी गयी। इसके बाद 1 नवम्बर 1858 को महारानी विक्टोरिया ने एक अन्य चार्टर की घोषणा की। इस चार्टर के माध्यम से लोगों को धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार दिया गया तथा समान रूप से योग्यता अनुसार कार्यालयों में नियुक्ति का अधिकार भी दिया गया।[8]

वास्तविक अर्थो में लोकतांत्रिक अधिकार की मांग सन् 1885 के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म के उपरान्त हुयी। प्रथम बार सन् 1895 में भारत के सांविधानिक विधेयक में मूलाधिकारों को स्थान मिला जिनमें अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, प्रत्येक व्यक्ति के निवास की अनुलांघनीयता, सम्पत्ति का अधिकार कानून के समक्ष समानता इत्यादि की बात की गयी थी। यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा तैयार किया गया स्व–शासन दस्तावेज (होम रूल डाक्यूमेण्ट) कहा गया। बाद में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारतीयों को अंग्रेजों के समान दर्जा देने और नागरिक अधिकारों से सम्बन्धित बहुत से प्रस्ताव पारित किये। सन् 1915 के भारत शासन अधिनियम में भारतीयों को लोक सेवाओं में समता का अधिकार प्रदत्त किया गया लेकिन इससे भारत के लोग प्रसन्न नहीं हुए। इसलिए सन् 1917 से 1919 के मध्य भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सिविल अधिकार और अंग्रेजों के समान ही समता के अधिकार के अनेक प्रस्ताव पारित किए।[9] जैसे कुछ उदाहरण है– हथियार रखने की समान शर्ते व नियम मुकदमें के दौरान न्यायाधीश द्वारा समान अनुप्रयोग की व्यवस्था एवं यह दावा करने के अधिकार कि कम से कम आधे न्यायाधीश उसके अपने देश के होने चाहिए। भारतीयों की एक मांग यह भी थी कि संसद एक अधिनियम पारित करें जिससे भारतीयों को रानी के नागरिकों के रूप में नागरिक अधिकारों की गारंटी प्राप्त हो सके और इस गारंटी से एक स्वतंत्र प्रेस, अभिव्यक्त की स्वतन्त्रता और कानून के समान समानता जैसे प्रावधानों को मूर्त रूप प्राप्त हो सके।

प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होने के उपरान्त भारतीयों की मांग में एक जबरदस्त परिवर्तन आया और वह परिवर्तन या भारतीयों की स्वतन्त्रता के लक्ष्य को आश्वस्त करना। भारतीय माँग माण्टेग्यू– चेम्सफोर्ड के सुधारों से निराश भी हुई। भारतीयों द्वारा स्वतन्त्रता के लक्ष्य की मांग पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था तत्कालीन अमेरिकी राष्ट्रपति बुडरों विल्सन का जिन्होने कई अन्य तत्वों के साथ आत्म निर्णय के अधिकार को सहमति दी थी।

भारतीय संविधान में अधिकारों का एक प्रमुख स्रोत एनी बेसेन्ट द्वारा 1925 में राष्ट्रमण्डल का भारतीय विधेयक का निर्माण था। राष्ट्रमण्डल के भारतीय विधेयक में अनुच्छेद 4 के तहत सात मौलिक अधिकारों की सूची दी गयी थी।[10] यह अधिकार थे :–

(A) व्यक्ति की स्वतन्त्रता और प्रत्येक व्यक्ति के निवास स्थान और सम्पत्ति का संरक्षण ।

(B) चेतना, व्यवसाय और धर्म की स्वतन्त्रता।

(C) विचार को अभिव्यक्त करने, शान्तिपूर्ण ढंग से बिना हथियारों के एकत्रित होने तथा संघ व समुदाय बनाने का अधिकार।

(D) निःशुल्क प्रारम्भिक शिक्षा का अधिकार।

(E) सड़क, न्यायालयों, सार्वजनिक स्थानों एवं इसी प्रकार के अन्य संस्थानों के प्रयोग का अधिकार।

(F) कानून के समक्ष समानता।

(G) स्त्री पुरूष की समानता।

मद्रास में 48 वें वार्षिक सम्मेलन में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अधिकारों के घोषणापत्र के आधार पर 1927 में स्वशासन के संविधान बनाने का एक प्रस्ताव पारित किया। इस समिति का गठन 1928 में मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ। इस समिति की रिपोर्ट को नेहरू रिपोर्ट के नाम से जाना जाता है। इस रिपोर्ट पर अमेरिका और युद्ध पूर्व के संविधानों तथा एनी बेसेण्ट की राष्ट्रमण्डल सम्बन्धी भारतीय विधेयक का प्रभाव था। मोतीलाल नेहरू समिति ने व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, धर्म की स्वतन्त्रता, अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, संगठन की स्वतन्त्रता, निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा, विधि के समक्ष समता, बंदी प्रत्यक्षीकरण का अधिकार भूतकालीन प्रभाव की विधियों से सुरक्षा, लोक नियोजन में समता का अधिकार , सार्वजनिक स्थानों में समता का अधिकार, विनियमों के तहत हथियार रखने की स्वतन्त्रता, महिला और पुरूषों को समता का अधिकार आदि अधिकारों की रिपोर्ट प्रेषित की। इनमें से बहुत से अधिकारों को भारत के संविधान 1950 में समाहित किया गया है।[11]

1931 के कांग्रेस के कराची अधिवेशन में पहली बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने मौलिक अधिकारों पर एक व्यापक योजना बनायी। कांग्रेस का यह कार्य मौलिक अधिकारों के विकास की प्रक्रिया में एक अन्य महत्वपूर्ण सीमा चिह्न था। इसमें कहा गया था कि राजनीतिक स्वतन्त्रता के अन्तर्गत को भी शामिल किया जाना चाहिए जिससे कि शोषण का वास्तविक अन्त किया जा सके। भारतीय नेताओं ने गोलमेल सम्मेलन में संवैधानिक दस्तावेज में मौलिक अधिकारों की घोषणा की मांग पर दुबारा बल दिया। ब्रिटिश शासकों द्वारा पारित भारत शासन अधिनियम 1935 में मूल अधिकारों को समाहित नहीं किया गया जिससे स्वतन्त्रता आन्दोलन के नेताओं को घोर निराशा हुई। आगे चलकर 1944–45 में सर तेज बहादुर सप्रू की अध्यक्षता में सर्वदलीय सम्मेलन द्वारा एक समिति गठित हुई। समिति ने 1945 के अन्त में अपनी रिपोर्ट दी । इस रिपोर्ट में कहा गया कि संविधान से यह मांग और उम्मीद की जाती है कि संविधान में राजनीतिक और नागरिक अधिकारों

के सम्बन्ध में समाज के प्रत्येक वर्ग को समानता, स्वतन्त्रता तथा संरक्षण की समानता, प्रत्येक व्यक्ति को धर्म तथा पूजा की स्वतन्त्रता सुनिश्चित की जाएगी । परिणाम स्वरूप संविधान सभा के द्वारा मूल अधिकारों और नीति निदेशक तत्वों को संविधान में समाहित किया गया।[12]

निष्कर्ष:

अतः लोकतांत्रिक अधिकार की खोज में जब भी हम भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन का जिक्र करेंगे तो यही पायेगे कि वर्तमान या भविष्य के भारत का निर्माण इन्हीं राष्ट्रीय आन्दोलनों के दौरान हो गया था। ब्रिटिशों ने हमेशा हमारे अधिकारों का हनन किया और यदि कुछ सामाजिक बुराइयों को देखकर कोई सुधार कार्य किया तो वह अपने हितों को ध्यान में रखकर किया।

सन्दर्भ–

1. जोशी, एम0सी0: गाँधी, नेहरू, टैगोर तथा अम्बेडकर; अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद, 2015 पं0सं0 17–52।
2. ग्रोवर, बी0एल0, यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास; एक नवीन मूल्यांकन, एस0 चन्द एण्ड कं0 लिमि0, नई दिल्ली, 2010, पृ0सं0 325–327।
3. वही, पृ0सं0 270–275।
4. वही, पृ0सं0 276–28Q
5. वही, पृ0सं0 281–289।
6. अहीर, राजीव : आधुनिक भारत का इतिहास; स्पेक्ट्रम बुक्स प्रा0लि0, नई दिल्ली, 2010 पृ0सं0 143–157
7. ग्रोवर, बी0एल0, यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास; एक नवीन मूल्यांकन, एस0 चन्द एण्ड कं0 लिमि0, नई दिल्ली, 2010, पृ0सं0 278–283।
8. लक्ष्मीकान्त, एम0 : भारत की राजव्यवस्था ; मैक्ग्राहिल एजुकेशन प्रा0लि0, 2014 पृ0सं0 1.3
9. एन0सी0ई0आर0टी0 कक्षा 12 : आधुनिक भारत का इतिहास।
10. https"//cadindia.clpr.org.in/historical-constitution/ the-commonwealthofindia-bill-national-convention-india-1925-Ist%20january%201925
11. ग्रोवर, बी0एल0, यशपाल : आधुनिक भारत का इतिहास; एक नवीन मूल्यांकन, एस0 चन्द एण्ड कं0 लिमि0, नई दिल्ली, 2010, पृ0सं0 400।
12. सुभाष सी0 कश्यम : हमारा संविधान, नेशनल बुक ट्रस्ट तृतीय खण्ड, 2001, पृ0 14।